स्वर्णपुरी क्षितिज पर स्वर्ण पुरुष का उदय

प्रवचनांश : पूज्य बाबू 'युगल' जी, कोटा
संकलन : ब्र. नीलिमा जैन, कोटा

भरतखण्ड की पावन धरती पर अनादिकाल से ही महापुरुषों का जन्म होता आया है। जब-जब भी धर्म डूबने को होता है, तब कोई न कोई क्रांतिकारी पुरुष का अवतरण अवश्य होता है और वह इस वसुधा को अपना मंगल संदेश देकर कृतार्थ करता है।

आज हमारे जीवन विधाता पूज्य गुरुदेवश्री का मांगलिक जन्म दिवस है। 109 वर्ष उनके जन्म को हुए और वे तो इस वसुधा का सुहाग लेकर चले गये लेकिन उनका जन्म दिवस हमारे लिए अनेक सुन्दर स्मृतियाँ लेकर आता है, सचमुच तो महापुरुषों को तोला नहीं जा सकता, मापा नहीं जा सकता केवल एक ही तरीका है उनके तौल और माप का उनके व्यक्तित्व की जो अनुभूतियाँ हैं, जिन अनुभूतियों से उनके व्यक्तित्व की रचना हुई है, यदि हम उनका अनुशीलन करके उनके व्यक्तित्व को अपने ज्ञान में आत्मसात करें और उस अनुभूति को भी आत्मसात् कर सकें तो पूरा का पूरा गुरुदेव चरित्र हमारे हृदय में उतर आयेगा।

केवल एक महापुरुष नहीं बल्कि पूर्व के व भविष्य के अनंत महापुरुष हमारी एक अनुभूति में उतर आऐगें, उस अनुभूति की गरिमा ऐसी हुआ करती है और शायद हमसे जयंती मनाने का कारण या उद्देश्य पूछा जाए तो हमारा उत्तर भी यही होगा। जैसा आचार्य

उमास्वामी ने कहा है – 'वंदे तद्गुण लब्धये' मैं उनके गुणों को अपने जीवन में उपलब्ध करने के लिए वंदना करता हूँ, यही वास्तविक वंदना है। सचमुच आज के वायुमंडल में हम गुरुदेव को देखें तो गुरुदेव एक महाप्रतापी अध्यात्म क्रांति के उन्नायक युगपुरुष हुए हैं।

युगपुरुष उनको कहते हैं जो ऐसे विषैले युग में कोई अमृतमयी क्रांति लाता है जिससे वह युग धन्य हो जाता है, स्मरणीय हो जाता है, ऐतिहासिक बन जाता है और इतिहास के पन्ने पर उनकी गाथा सोने के अक्षरों से लिखी जाती है। ऐसे ही युगदृष्टा, युगसृष्टा और आध्यात्मिक क्रांति के सूत्रधार पूज्य गुरुदेव का स्वर्णपुरी क्षितिज पर स्वर्ण पुरुष के रूप में उदय हुआ। हम उन्हें आध्यात्मिक क्रांति के सूत्रधार कहते हैं। इस बात के लिए हमारा मन साक्षी भी देता है या नहीं ? क्या उसके पहले अध्यात्म नहीं था ? क्या आध्यात्मिक महापुरुष नहीं हुए।

पूज्य गुरुदेव का जन्म हुआ, उस जमाने को हम देखें तो सचमुच जैन धर्म का प्रांगण अंधकारमय था, मोक्ष का विधान प्रायः लुप्त हो चुका था। सर्वत्र भीषण कर्मकाण्ड छाया हुआ था। कहना चाहिए कि काया रह गई थी और प्राण निकल चुके थे। पुण्य को धर्म के सिंहासन पर बिठा रखा था। हम तो अपने युग की बात करते हैं, जो बीते महापुरुष हैं, उन्होंने भी युग को दिशा तो दी, लेकिन कुछ विशिष्ट महापुरुष होते हैं, सबके आत्मदर्शन और अनुभूति का मार्ग तो एक ही होता है, परन्तु कुछ ऐसी विशेषता उनके व्यक्तित्व में होती है कि अगणित लोग सच्चे मार्ग को अवश्य पा लेते हैं, उनके अनुरोध के बिना स्वतः ही सत्य की ओर आकर्षित होकर सत्य को स्वीकार कर लेते हैं।

यह एक विशिष्ट घटना पू. गुरुदेव के जीवन के साथ जुड़ी हुई है। गुरुदेव ने स्वयं तो जो करना था या करना चाहिए, वह किया ही, जैन दर्शन में जो सर्वोत्कृष्ट मोक्षमार्ग है और मोक्षमार्ग का जो मूल है, वह है शुद्धात्मानुभूति। उसे तो गुरुदेव ने प्राप्त किया ही लेकिन शुद्धात्मानुभूति को ऐसे समय में प्राप्त करना कि जब उसके विधिविधानों का लोप हो चुका था, वह नि:शेष हो चुकी थी, कोई मार्ग बताने वाला नहीं था। जैन धर्म ने जिस शुद्धात्मानुभूति को मोक्षमार्ग कहा, उसकी विधि क्या है ? ऐसा कहने वाले तो बहुत थे, कहते भी थे, लेकिन सचमुच इसका विधिविधान किसी के पास नहीं था, बल्कि उनके विधि-विधानों का स्थान कुछ उससे विपरीत विधि-विधानों ने ले लिया था कि जो मुक्ति तो नहीं भेजते, लेकिन पाताल में जरूर भेज सकते हैं। ऐसे समय में पूज्य गुरुदेव का जन्म हुआ इसलिए हमें अधिक महिमा गुरुदेव की आती है।

ऐसे युग में ऐसे स्थान पर जन्म हुआ कि जहाँ यह आशा भी नहीं की जा सकती कि यहाँ पैदा होकर कोई पुरुष उन बंधनों को तोड़कर सत्य की खोज में निकल जायेगा और सम्प्रदाय की दासता छोड़ स्वयंबुद्ध होकर स्वयं इस सत्य को प्राप्त करेगा, सत्य की अनुभूति करेगा। यह उस समय तो कल्पना से बाहर की बात थी क्योंकि स्थानकवासी कुल में गुरुदेव का जन्म हुआ और वहाँ फिर और आगे बढ़ गए। बाल्य से ही उनको भीतर से अत्यन्त विरक्त परिणाम था। ज्ञान पक्का भी नहीं था और सच्चा भी नहीं था, लेकिन आतुरता बहुत थी तथा सत्य की शोध जारी थी, उनका हृदय उस चिर शांति की तलाश के लिए तड़प रहा था।

उनके चित्त में ऐसी तरंगे उठती थीं कि कुल के योग्य विधिविधान भी मैंने स्वीकार किये हैं, लेकिन कुछ मिले ऐसा लगता नहीं है। जिसके लिए मैंने यह सब किया, उसको मैं पा सकूँ यह संभव नहीं लगता और इसीलिए उनकी सत्य की खोज समाप्त नहीं हुई, अन्यथा हम देखते हैं कुल व धर्म का जो मोह है, उसका जो बंधन प्रतिबंधन है, वहाँ से निकलना बहुत कठिन है। जीव विकट जंगल में से वनचरों के चंगुल में से, आंधी और तूफानों में से भले ही निकल जाए, लेकिन कुल धर्म का जो प्रतिबंध है, वह पिशाच की तरह है, क्योंकि व्यक्ति मानता है कि मेरा तो धर्म ही यही है, लेकिन हम स्वयं कल्पना करते तो हैं सोचते भी हैं, लेकिन आश्चर्य में डूब जाते हैं, वहाँ पैदा हुए उस कुलाचार का पालन किया इसके बाद स्थानकवासी संप्रदाय में ही दीक्षा भी ले ली, अब कैसे आशा कर सकते हैं कि यह व्यक्ति उस बंधपाश से निकल जाएगा और फिर अपने को इतना ऊँचा अनुभव करने वाला, उस ऊँचाई के अहं का विसर्जन करके इस सनातन धर्म में इतना झुक जाएगा कि वह जगत की व रोटियों की कुछ परवाह ही नहीं करेगा। बल्कि अपने प्राणों की परवाह नहीं करेगा, कल्पना से बाहर थी, यह सब बातें। हमारा भाग्य था जो हम भी इस शताब्दी में पैदा हुए और इसी शताब्दी में गुरुदेव का अवतरण हुआ और कहना चाहिए यह भी कोई अनूठा पुण्य था, अन्यथा जहाँ लोग गुरु की तलाश करते फिरते हैं, लेकिन गुरु नहीं मिलते वहाँ अनायास बैठे-बैठे लाखों लोगों को गुरु व उनकी वाणी मिल गयी और गुरु देशना मिल गई, हम गुरु के लिए तड़पते हैं कि गुरु मिलना चाहिए क्योंकि जिनवाणी कहती है बिना गुरु सम्यक्त्व नहीं होगा। उसके बाद उस वाणी को धारण करने वाला समझ सकने वाला ज्ञान

भी मिलना चाहिए यह सारे समवाय मिले तो काम हो सकता है। हमारा यह काम कितनी सुलभता से हो गया कोई मेहनत नहीं करनी पड़ी, मतलब संप्रदाय में किसी को यह कहना नहीं पड़ा कि इधर आ जाओ यह तो नहीं कहना पड़ा और इससे भी गहरी बात सच में बहुत ही अच्छा हुआ, हमारे लिए कि गुरुदेव स्थानकवासी संप्रदाय में पैदा हुए। वहाँ कुछ भी था उन्हें असत्य की महा विकट बाधा थी, उसे उन्होंने अपने निर्मल ज्ञान की सामर्थ्य से प्राप्त कर लिया। यदि वे दिगंबर कुल में पैदा हो जाते तो सच्चाई तो यह थी कि वह भी इस कुल धर्म का पालन करने लगते, क्योंकि बदलने की ओर सत्य को शोधने की गुंजाइश भी कहाँ थी, प्रारंभ से ही हम मानते आये हैं, इसके आचार्य और इसके मुनिराज ही सच्चे होते हैं तो फिर कौन रास्ता बताने वाला मिलता।

देश को राष्ट्रीय दासता से मुक्त करने के लिए जैसे लौकिक पुरुष महात्मा गांधी का जन्म हुआ वैसे ही इस अध्यात्म के क्षेत्र में आत्मतत्त्व को कर्म की दासता से मुक्त करने के लिए एवं अणु-अणु की स्वतंत्रता की घोषणा करने के लिए पू. गुरुदेव का अवतरण हुआ। एक पैगम्बर की तरह विदेह से सीमंधर परमात्मा का संदेश लेकर आए थे। पू. गुरुदेव पश्चाताप करते हुए स्वयं कहा करते थे - 'सीमंधर नाथ का विरह हुआ, इस भरतक्षेत्र में। जिस समय सोनगढ़ में मानस्तंभ की प्रतिष्ठा हुई, उस समय गुरुदेव की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे।

विदेह में तीर्थंकर परमात्मा सीमंधरनाथ की वाणी नित्य सुनने पर भी ऐसे सम्प्रदाय में जन्म लेना मताग्रह का अद्‌भुत उदाहरण है

लेकिन उनकी प्रज्ञा देशना के सत्य संस्कार लेकर आई थी। बाल्यकाल से ही भीतर से प्रतिध्वनियाँ उठा करती थी कि जिस मार्ग पर मैं चल रहा हूँ, वह सत्य नहीं है, विशुद्धि के साथ ज्ञान का संस्कार भी प्रबल था - 10-12 वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक कविता लिखी थी - 'शिवरमणी रमणार तू, तू ही देवनोदेव रे' तभी से वैराग्य में निरन्तर वृद्धि होती रही और उन्होंने 23 वर्ष की भरी यौवन अवस्था में स्थानकवासी संप्रदाय में दीक्षा ले ली - वहाँ भी सर्वोच्च पद पर आसीन हो गये, शुभाचार व क्रियाकलापों का बड़ी दृढ़ता से पालन करते रहे, लेकिन अन्तर में कुछ रुचता नहीं था, अपने गुरु से कहते थे, मुझे ये गोचरी लेने जाना, और पात्र रंगने का मार्ग अच्छा नहीं लगता। इस तरह वहाँ उस वेश में भी सत्य की हूक उठा करती थी।

अचानक संवत् 1978 में दीक्षा के 8 वर्ष बाद एक दामोदर नामक सेठ ने उन्हें दि. शास्त्र समयसार भेंट स्वरूप दिया। सेठ को तो उसकी महिमा नहीं थी। समयसार खोलते ही पहली गाथा व कलश पढ़ते ही उनके मुँह से निकल पड़ा 'सेठ यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है' इसे रत्नों से तोला जाय तो भी कम है, उसका गहराई से वाचन करने में वे सब खाना पीना भूल गये - जैसे गर्मी से तप्त व्यक्ति को शीतल कुण्ड मिल जाता है वैसे पूज्य गुरुदेव इस समय के कुण्ड में डुबकी भरते चले गये।

उस सम्प्रदाय में तो ऐसे बोल बोले जाते थे कि भगवान ने हमारी मुक्ति देखी होगी वही होगी और चार घातिया कर्मों के कारण केवलज्ञान रुक जाता है आदि आदि विपरीत असत्य प्ररूपण ही चलता था, तब पूज्य गुरुदेवश्री ने बोल बदले कि हमारे परिणामों के पुरुषार्थ पूर्वक

मुक्ति होती है, वह नियति भी निश्चित है। चार घातिया कर्मों के अभाव से केवलज्ञान नहीं होता, अन्तर में आत्मा के पुरुषार्थ व ध्यान द्वारा केवलज्ञान होता है। इसमें भी उत्कृष्ट बात यह आई कि जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, वह भाव भी बंध का कारण है। उनकी यह चर्चा इस सम्प्रदाय को स्वीकार नहीं होती थी किन्तु पू. गुरुदेव हजारों समुदाय के बीच निर्भयता से बोला करते थे और बड़े-बड़े साधु-श्रोता बड़ी एकाग्रता से सुना करते थे।

सचमुच! ज्ञानचक्षु खुल जाने पर गुरुदेव को उक्त वेश में अधिक समय रहना सह्य नहीं हुआ, उनको ऐसा लगा कि जिस अवस्था में मैं यहाँ हूँ, वह छल, छद्म है। मेरे वचन व काय में एकरूपता होना चाहिए। अत: सिंह की तरह संप्रदाय के पिजरें को तोड़ वे एकाकी सोनगढ़ नामक छोटे से ग्राम में आकर निवास करने लगे। एकांत निर्जनों में जाकर समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि दिगंबर शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। उस सम्प्रदाय में तहलका मच गया, इनके प्रति षड्यंत्र किये जाने लगे, लोग कहने लगे कि दिगंबर संप्रदाय वाले आपको रोटियाँ नहीं देंगे, पत्थर फेंके गये, गालियों की बौछारे की गयीं, लेकिन वीतराग निर्ग्रन्थ मार्ग पर चलने वाले तो शेर ही होते हैं। पू. गुरुदेव का उत्तर होता है मैंने रोटियों के लिए यह मार्ग नहीं अपनाया। मिले तो मिले नहीं मिले तो कोई चिन्ता नहीं। आत्मा को रोटियाँ नहीं चाहिए, वह खाता भी नहीं, वह तो ज्ञान और आनंद का भोजन करता है, उसी से जिंदा रहता है।

संप्रदाय का विरोध शांत हुआ और यहाँ स्वर्णपुरी क्षितिज पर पू.गुरुदेव का उदय हुआ तो यहाँ विरोध शुरू होने लगा क्योंकि सूर्य

का उदय होता है तो उल्लू आँख बंद कर लेता है। सत्य का उद्घाटन होता है तो असत्य तिलमिला जाता है। पू. गुरुदेव ने कुछ नया नहीं कहा किन्तु अनादि तीर्थंकरों का चला आया शब्द ब्रह्म परमागम ही उनके प्रवचनों का प्रतिपाद्य होता था। संवत् 1991 में महावीर जयंती के दिन अपने छद्म वेश (मुँहपट्टी) को भी भगवान पार्श्वनाथ के फोटो के समक्ष त्याग दिया और शुद्ध दिगम्बरत्व में दीक्षित हो गये।

सचमुच! कितनी महिमा है, इस बात की जहाँ मुक्तिमार्ग के दर्शक का ही अभाव हो गया था और यह प्रगट हो गये। पूज्य गुरुदेव के लिए ऐसा भी कहा गया कि वे निगुरे थे, उनका कोई गुरु नहीं था, लेकिन निगुरे तो तीर्थंकर भी होते हैं, उनके भी कोई गुरु नहीं होते, नमः सिद्धेभ्यः कहकर स्वयं दीक्षा लेते हैं। पूज्य गुरुदेव के पास भी पूर्व भव का डिपोजिट ज्ञान था, लेकिन गुमराह सा हो गया था, जैसे रास्ते पर चलने वाला थोड़ी देर के लिए रास्ता भूल जाता है, जब उसे अपना स्थान नहीं मिल पाता तो वह रास्ता बदल लेता है, ऐसा ही उनके साथ हुआ और तत्काल यहाँ आकर उनके द्वारा जिनवाणी का विमोचन हुआ, मैं तो यही कहूँगा कि जिनवाणी को पू. गुरुदेव ने ही खोला, उसके रहस्य को समझ पाना यह सामान्य श्रुतज्ञान के द्वारा संभव नहीं, वह कोई विशिष्ट ज्ञानोपयोग का कार्य है।

हमारे पास भी श्रुतज्ञान तो था, लेकिन जैसा पढ़कर सुनाते वैसा सुन लेते थे, मन में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती थी, श्रुत को पढ़ने-सुनने की ताकत व उसकी प्राप्ति ही पू. गुरुदेव से हुई, श्रुतज्ञान ने देशना व उपदेश पाकर उसे आत्मसात् किया, ऐसे श्रुत की, रक्षा करना, रक्षा ही नहीं, वहीं जिनश्रुत पूजनीय है। दिव्यध्वनि में भी

इसी का यशोगान आता है, गणधर का ज्ञान तो पराकाष्ठा वाला होता है, वहीं उत्तरोत्तर चला आकर, परमागम व आगम कहलाता है। जो श्रुतज्ञान इसे ग्रहण कर पाता है, उतनी ही जिनवाणी है।

ऐसे पुरुष मताग्रह के पंजे से छूटकर यहाँ आये यह पुरुषार्थ सिर्फ ज्ञान का है और उस ज्ञान के द्वारा सारी जिनवाणी से यह ढूँढ लेना कि आत्मा तो वर्तमान में शुद्ध ही है। वर्तमान में अशुद्ध तो कहा जाता है, अशुद्धता की कल्पना से अशुद्ध नहीं होता, आत्मा वर्तमान में शुद्ध है यह बोलने में कंठ रुंध जाता था या फिर उसमें नय लगाकर उसकी पिसाई कर दी जाती थी, नयों के चक्र में से उस नयातीत आत्मा को निकाल लेने वाले, उनका नाम कानजी स्वामी था, जिन्होंने लाखों लोगों को इस जाल से निकाला।

जैनदर्शन के जितने भी सिद्धांत है, वह सब रुंध गये थे, उनका विवेचन उल्टी दिशा की ओर बढ़ रहा था, पूज्य गुरुदेव ने सिद्धान्तों का हार्द खोलकर उन्हें पराकाष्ठा तक पहुँचाया। इतना ही नहीं मुक्ति के अंतिम चरण तक जाकर हमें बिठाया। इनकी समझ के बिना जो कुछ भी भ्रांतियाँ बढ़ रही थीं, मुक्ति उतनी ही दूर होती जा रही थी, इतनी जितना कि अलोकाकाश! चाहे वह नजदीक बैठा दिखाई दे या चाहे दूर हो, लेकिन हमारे श्रुतज्ञान में यदि थोड़ी भी भूल है, तो समझना आत्मानुभूति भी उतनी ही दूर है।

कर्तावाद व अकर्तावाद का पता नहीं था, चाहे पढ़ा हो या नाम भी सुने हो, जैनदर्शन अकर्तावादी है। लेकिन यदि गुरुदेव न होते, तो अकर्तातत्त्व की दृष्टि कौन देता? ध्यान का विषय कौन है? मेरा ध्येय कौन है? परिणाम की दृष्टि का फल संसार

है। अपरिणामी ध्रुव कारण परमात्मा ही एकमात्र मेरा श्रद्धेय है, ज्ञान का ज्ञेय भी वही है, ऐसे अनेक अध्यात्म के अध्याय पू. गुरुदेव के आविर्भाव से खुलकर उद्‌घाटित हुए हैं।

एक और आश्चर्य! पू. गुरुदेव के पदार्पण से स्वाध्याय व शिविरों, पंचकल्याणक, ब्रम्हचर्य प्रतिज्ञा, साहित्य प्रकाशन की तो बाढ़ ही आ गई। अरे! व्यवहार का शुद्ध रूप भी हमें पू. गुरुदेव के जीवन में ही देखने को मिला, व्यवहार के प्रति संदेह करने वाले अफवाह फैलाने वाले जब सोनगढ़ गये, तो देखकर चकित रह गये, उनके दिमाग बदल गये, उनकी वाणी सुन उन्हीं के हो गये। अरे! तत्त्वज्ञान के बल पर होने वाली विशुद्धि थी उनके पास।

ऐसे महापुरुष तो विरले होते हैं। महाभाग्य से मिलते हैं, जिसने भी इस सच्चाई को पाया उसके मूर्तमान रूप पू. गुरुदेव थे। सत्य के प्रति कई गोले फेंके गये, आरोप दिये गये, लेकिन झूठे आरोपों का नाम ही तो असत्य है। अज्ञान ही ज्ञान का विरोध करता है। इन सिद्धान्तों को एकांत कहा जाने लगा, लेकिन सत्य किसी से खंडित नहीं होता और उसे किसी के समझौते की भी जरूरत नहीं होती, पू.गुरुदेव ने किसी असत्य के साथ समझौता नहीं किया। जैसे गांधीजी ने राष्ट्र के लिए अंग्रेजों के साथ किसी भी बात पर समझौता नहीं किया। वैसे गुरुदेव भी इस लोकोत्तर मार्ग में किंचित् भी नहीं झुके। अरे! सत्य तो शांत व आनंदमय होता है, वह शाश्वत व अनादि होता है।

हमारे दिगंबर के बड़े-बड़े पढ़े-लिखे प्रसिद्ध विद्वान शास्त्रज्ञ, न्यायतीर्थ, साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति, सिद्धान्ताचार्य, लेखक भी

विद्यमान थे, क्या वे इन परमागम में से आत्मानुभूति का मार्ग नहीं ढूँढ़ पाये ? किन्तु क्षयोपशम का विस्तार हो जाना अलग बात है और निर्मल प्रज्ञा द्वारा अनुभूति का मक्खन निकाल लेना, किसी दिव्य ज्ञान की शक्ति की महिमा है। वह गुरुदेव के पास थी....।

सचमुच इस युग में सम्यग्दर्शन के आविष्कर्ता पू. गुरुदेव ही हैं, जिन्होंने मोक्षमार्ग का प्रथम चरण हमें दिया।

ये विद्वान सोनगढ़ भी पहुंचे वहाँ पू. गुरुदेव के अध्यात्म रस से भीगे प्रवचनों में आत्मा व जैन सिद्धांतों का अद्‌भुत रहस्य व महिमा सुन, उनका अभिमान गल गया, उनके मुँह से निकल पड़ा – 'समयसार पढ़ना पू.गुरुदेव ने सिखाया है, यह कानजी स्वामी का युग है' कानजी स्वामी ने वही बोला है, जो अनंत तीर्थंकरों व महावीर की देशना में आया है।

पू. गुरुदेव के जीवन में तत्त्व के साथ फलती हुई विशुद्धता थी, वही बाहर आई और गुजरात के स्थानकवासी लाखों लोग उनके पुण्य व पवित्रता से खींचकर श्रद्धा से अपने गुरु के निकट आये। गुजरात के सूखे में तत्त्व की हरियाली लहराने लगी।

उनके अंतिम जीवन में व्याधियों से शरीर घिर गया था लेकिन अपने चैतन्य की अनुभूति में अत्यंत शांत परिणाम वर्तता रहा, वे कहते थे – देह तो जड़ पिण्ड है, आत्मा को व्याधि होती ही नहीं।

विरोधी लोगों ने आरोप लगाये कि जसलोक अस्पताल से उनका स्वर्गवास हुआ, लेकिन मैं आपको कहता हूँ कि क्या अस्पताल में मृत्यु होने से परिणामों की दशा को नापा जा सकता है। दि. मुनिराज

पर उपसर्ग कर कोई उन्हें शिलाओं पर फैंक दे, समुद्र में डाल दे, लेकिन ऐसी दशा में वे तो केवलज्ञान लेकर मोक्ष चले जाते हैं।

मैं तो दंभ से कहता हूँ बताओ जिनवाणी में कहाँ लिखा है कि एक अविरति श्रावक की मृत्यु कहाँ होना चाहिए? ज्ञानी सम्यग्दृष्टि नारकी नरक की मारकाट में ही देह छोड़ता। जसलोक में जाकर परिणाम बिगड़ना आवश्यक है और क्या मंदिर में आकर परिणाम सुधरना आवश्यक है। अरे! परिणामों का किसी स्थान विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं, चाहे मसान हो या महल। हमारे गुरुदेव तो अत्यन्त निश्चल व निरभिमानी पुरुष थे। वह तो अपने को दि. सत् पथ पर चलने वाले सामान्य श्रावक के दर्जे में ही रखते थे और लोग उन्हें मुनि से भी ऊँची भूमिका में देखना चाहते थे, उनका आग्रह होता था कि इतनी आत्मा की चर्चा के बाद भी गुणस्थान क्यों आगे नहीं बढ़ता? ऐसे लोगों को मोक्षमार्ग की भूमिकाओं का ज्ञान ही नहीं है, उनने चारित्र अंगीकार नहीं किया, यह बात भी कितनी अच्छी रही क्योंकि परिणाम भी भूमिका से ऊपर उठकर अपने को ऊँची भूमिका वाला घोषित करना तो छल है। जिनवाणी की आज्ञा के अनुसार यह विपरीत पाप का ही परिणाम है, जिसमें है कुछ और दिखाया कुछ और जा रहा है। वीतरागता व चारित्र बलात् नहीं आता, वह सिर पर बोझे की तरह लादा नहीं जा सकता, यह तो वीतराग निर्विकल्प शुद्ध जीव की रमणता में उदित होता है, उसके विकास व पूर्णता का क्रम निश्चित होता है। चारित्र की उनके भीतर उत्कृष्ट अभिलाषा रहती थी, वे चारित्रधारी भावलिंगी संतों के दर्शन के लिए तड़पते थे, उनकी भक्ति व महिमा में वे आत्मविभोर हो जाते थे –

ऐसे आत्म साधक गुरुदेव की मुक्ति तो निकट आ चुकी थी, आधि-व्याधि-उपाधि के बीच भी भावश्रुतज्ञान में ज्ञायक का ही निरंतर संचेतन - यही उनकी जीवन साधना थी।

आत्मसाधक महापुरुष तो अपने को खुलकर निधियाँ लुटाते हैं, जैसी तीर्थंकरों के काल में होती है देशना, वैसे ही पूज्य गुरुदेव ने 45-45 वर्ष तक अध्यात्म अमृत की बरसाते बरसाई हैं। सूखे में बदरिया बरस गई। पात्रता होती है वही लूट पाता है और अपने श्रुत के पात्र को भर लेता है। यदि पिपासा न हो तो रीता का रीता रह जाता है। जैसे किसी को नींद आ रही हो तो उसे जगाया जा सकता है, किन्तु यदि नींद का बहाना कर सोया है, उसे कौन जगाये?

पू.गुरुदेव के तत्त्व में विकृतियाँ आने लगीं - अधिकांश लोग उस मर्म को नहीं समझ पाये, उसमें से अभिप्राय निकालने लगे, लेकिन यह तो हर काल में होता ही आया है, इसमें क्या आश्चर्य है। आज उनका साहित्य, टेप, सीडी विद्यमान है, उसे पढ़कर व सुनकर हम अपनी श्रद्धा को साफ करें, कुछ भाग्यशाली हैं जिन्होंने इस सत्य को समझा और अपने अन्तस् में उतार लिया।

सचमुच! महापुरुष का माप करना असंभव है। वे तो मात्र अनुभूति की तुला पर ही तोले जा सकते हैं। उन्होंने शुद्धात्मानुभूति एक ही मोक्षमार्ग है, ऐसा दान व वरदान इस संपूर्ण भारत को दिया। इसे हम शीघ्र प्राप्त करें। मुक्तिमार्ग की ओर चरण बढ़ायें। ऐसी मंगल भावना से अगणित श्रद्धा सुमन उन मुक्तिदूत के चरणों में समर्पित करता हूँ।

कर्मकाण्ड की बालू के, भूधर धसकने लगे,
सर्दियों से सिसकते मूल्य, जीवन के उभरने लगे,
रंगे सियारों की खिसकने लगी रे! धरती
स्वर्णपुरी क्षितिज पर स्वर्ण-पुरुष हँसने लगे।

पूज्य गुरुदेव का दिव्य शासन जयवंत रहे, जयवंत रहे.....।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी की 133वीं जन्म जयंती पर 2 मई 2022 वैशाख सुद इज सं. 2079	**आचार्य कुन्दकुन्द फाउंडेशन कोटा मो. 9414181512**